अध्ययन सामग्री

विषय- हिन्दी

सेमेस्टर- प्रथम(1) स्नातकोत्तर

प्रश्न पत्र- प्रथम(cc-1)

भाषा की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धांत

पदनाम- डॉ स्मिता जैन

एसोसिएट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

एच डी जैन कॉलेज, आरा

Scanned with CamScanner

प्रश्न — भाषा की उत्पत्ति के प्रमुख सिद्धान्तों पर विचार करें।

'अतिपरिचयादवज्ञा' किसी से अति परिचय होने से उसके विषय में हमें बहुत कुछ अवज्ञा हो जाती है, या कम से कम उसके विषय में अधिक उत्सुकता नहीं रहती। इस नियम के अनुसार भाषा के साथ हमारा अति गहरा संबंध होने से प्रायः यह प्रश्न भी हमारे मन में कभी पैदा नहीं होता कि मनुष्य भाषा की उत्पत्ति या प्रवृत्ति संसार में आदि-आदि में किस प्रकार हुई होगी।

भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न पर बहुत पहले से विचार किया जाता रहा है, और लोगों ने केवल अनुमान द्वारा ही तरह-तरह के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। दार्शनिकों, मानवविज्ञानियों, भाषाविज्ञानियों, इतिहासज्ञों ने अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, किन्तु वे सभी अनुमान-प्रसूत हैं। निश्चित और निर्णयात्मक सामग्री का अभाव होने से उनमें कोई भी सिद्धान्त निर्दोष नहीं है क्योंकि इस प्रश्न का पूर्ण और संतोषप्रद समाधान किसी से नहीं होता। अतः कोई समुचित और स्वीकार्य समाधान नहीं मिलने से आधुनिक भाषाविज्ञान ने इस समस्या पर विचार करना बंद कर दिया है। १८६६ ई० में स्थापित पेरिस की भाषाविज्ञान समिति (ला सोसियेते द लेंग्विस्तीक) ने अपने अधिनियम में इस बात का स्पष्ट निर्देश कर दिया है कि समिति के तत्त्वावधान में भाषोत्पत्ति विषयक विचार नहीं हो सकता।

किन्तु, इस प्रतिबन्ध और उपेक्षा के बावजूद भी इन सौ वर्षों में यह प्रश्न बार-बार उठाया गया है और प्रायः हर दशक में इस संबंध में एक-दो नये सिद्धान्त या पुराने सिद्धान्तों की नवीन व्याख्या

-ये हमारे समक्ष रखी गई हैं। किसी की भाषा के आतीत के चिन्तन का, और कुछ नहीं तो, ऐतिहासिक महत्व तो होता ही है।

भाषा की उत्पत्ति तक पहुँचने के दो मार्ग हैं —

(1) प्रत्यक्ष मार्ग (2) परोक्ष मार्ग।

जो वाद या सिद्धान्त सीधे यह बतलाते हैं कि अमुक प्रकार से भाषा की उत्पत्ति हुई, अर्थात् जो सीधे जन्म को पकड़ने का प्रयास करते हैं, उन्हें 'प्रत्यक्ष मार्ग' के अन्तर्गत रखा जाता ~~कारण~~ उनके प्रत्यक्ष मार्ग है।

दूसरी ओर भाषा के आरम्भ तक पहुँचने का एक 'परोक्ष मार्ग' भी है। 'परोक्ष मार्ग' में जन्म पर दृष्टि न ले जाकर भाषा के वर्तमान रूप पर दृष्टि ले जाई जाती है और उनके ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन आदि के आधार पर धीरे-धीरे वर्तमान से भूत की ओर चला जाता है इससे भाषा की उत्पत्ति पर तो प्रकाश नहीं पड़ता, पर उसके आरम्भिक रूप का कुछ अनुमान अवश्य लग जाता है।

(क) प्रत्यक्ष मार्ग —

(1) <u>दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त</u> —

भाषाओं की उत्पत्ति के संबंध में यह सबसे प्राचीन मत है। लोगों का विश्वास रहा है कि उनकी अनेक वस्तुओं की भाँति ही भाषा को भी भगवान ने ही बनाया। हिन्दू संस्कृत भाषा को 'देववाणी' कहकर सारी भाषाओं की जननी घोषित करते हैं। ऋग्वेद का एक मंत्र है —

" देवीं वाचमजनयन्त देवाः
तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।"

Scanned with CamScanner

— वाग्देवी (वाणी) को देवों ने उत्पन्न किया और उसे सभी प्राणी बोलते हैं।

इस मंत्र में वाणी की दिव्य उत्पत्ति असंदिग्ध शब्दों में कही गई है। महर्षि पाणिनि द्वारा उद्धृत चौदह प्रत्याहार-सूत्रों को शिव के डमरू-निनाद से उत्पन्न मानना दिव्योत्पत्ति का ही रूपान्तर कहा जा सकता है। अनीश्वरवादी बौद्ध और जैन भी पालि और अर्धमागधी को आदिम भाषा समझते हैं क्योंकि बुद्ध और तीर्थंकर महावीर ने अपने उपदेशों के लिए पहले-पहल इन्हीं भाषाओं का प्रयोग किया था। ईसाई ओल्ड टेस्टामेन्ट की इब्रानी (हिब्रू) भाषा को और मुसलमान अरबी को संसार की प्रथम भाषा मानते हैं।

ईसाईयों का विश्वास है कि ईश्वर ने आदम और हव्वा को पूर्ण विकसित इब्रानी भाषा दी और यदि मनुष्य ने अपनी महत्वाकांक्षा के कारण स्वर्ग तक पहुँचने का दुष्प्रयास न किया होता तो बाबुल की मीनार वाली घटना घटित न होती और आज संसार में जो भाषा भेद दिखाई देता है, वह दिखायी न देता। सर्वत्र इब्रानी भाषा का ही प्रयोग चलता होता।

इसी मत के प्रभाव से लोगों का यह भी मत रहा है कि मनुष्य जन्म से ही एक भाषा सीखकर आता है और वही भाषा ईश्वर की बनाई तथा सबसे पुरानी भाषा है। इस संबंध में मिस्र के एक राजा सैमेटिकस ने तथा अपने यहाँ बादशाह अकबर ने प्रयोग करवाये थे पर उनसे परिणाम यही निकला कि बच्चा पेट में से कोई भाषा सीख कर नहीं आता।

'बिनु हरि कृपा तृनहु नहिं डोले'। के अनुयायी की दृष्टि में ईश्वरेच्छा सारी समस्याओं

देती है किन्तु विज्ञान की तर्काग्रही दृष्टि उसे स्वीकार नहीं कर पाती। का सहज समाधान कर

इस सिद्धान्त के विपक्ष में ये बातें मुख्यतः कही जा सकती हैं :—

(क) यदि मानव-भाषा ईश्वर-प्रदत्त है तो विभिन्न भाषाओं में इतना भेद क्यों है? पूरे संसार के गदहे, घोड़े, कुत्ते आदि एक से बोलते हैं किन्तु मनुष्यों में वह एकरूपता नहीं है।

(ख) यदि भाषा ईश्वर-प्रदत्त होती तो कदाचित आरंभ से ही वह विकसित होती, किन्तु इतिहास में इसके उलटे प्रमाण मिलते हैं। स्पष्ट है कि यह मत वैज्ञानिक दृष्टि से अग्राह्य है।

(2) विकासवादी सिद्धान्त — इसके अनुसार भाषा का धीरे-धीरे विकास हुआ है। सिद्धान्ततः तो यह ठीक है, किन्तु इसमें विकास या उत्पत्ति एवं अर्थ-ध्वनि के संबंध का संकेत नहीं है।

(3) धातु सिद्धान्त या (रणन सिद्धान्त - डिंग-डॉंग सिद्धान्त) — जर्मन के विद्वान प्रो० हेज के मत के आधार पर मैक्समूलर ने इस विचित्र सिद्धान्त को हमारे समक्ष रखा। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार की हर चीज की अपनी ध्वनि होती है जो किसी वस्तु से आहत होने पर व्यक्त हो जाती है। उदाहरणार्थ - यदि हम से किसी धातु, लकड़ी, ईंट, पत्थर, शीशे आदि पर आघात करें तो उनसे उत्पन्न ध्वनियों को सुनकर ही कोई पहचान ले सकता है कि ये किस वस्तु से उत्पन्न हुई। इसी ध्वनि को रणन कहते हैं।

इसी प्रकार आरंभ में मनुष्य में ऐसी सहजात शक्ति थी कि जिस किसी चीज के सम्पर्क में वह आता, उसके लिए उसके मुँह से एक प्रकार की ध्वनि निकल जाती। इसी तरह संसार की समस्त

वस्तुओं के लिए शब्द बन गये। भाषा का निर्माण हो जाने के बाद मनुष्य की यह सहज शक्ति समाप्त हो गयी कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें वैज्ञानिकता का बिलकुल अभाव है। (1) बाह्य वस्तु की ऐसी प्रतिक्रिया कभी नहीं होती। इसका कोई युसंगत आधार नहीं है। (2) भाषा केवल धातु से ही नहीं बनती। प्रत्यय, उपसर्ग आदि अन्य रूपों की भी आवश्यकता पड़ती है। इस मत में उनके लिए कुछ नहीं कहा गया है। (3) आज भाषाविज्ञानवेत्ता यह नहीं मानते कि धातुओं के आधार पर प्राचीनकाल में शब्द बने, अपितु यह माना जाता है कि भाषा के अध्ययन के आधार पर धातुओं का पता, भाषा की उत्पत्ति के कई हजार वर्ष बाद लगाया गया। इस प्रकार इस मत में कोई तत्व नहीं है। आगे चलकर यह सिद्धान्त स्वयं मैक्समूलर को इतना सदोष प्रतीत हुआ कि उसने इसे छोड़ दिया।

(4) निर्णय - सिद्धान्त -

इसे प्रतीकवाद, स्वीकारवाद, संकेतसिद्धान्त, संकेतवाद आदि भी कहा गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार आरंभ में मनुष्यों ने इकट्ठा होकर सभी वस्तुओं का प्रतीक या सांकेतिक नाम निश्चित करके स्वीकार किया और वहीं से भाषा का आरंभ हुआ। ध्यान देने पर पता चलता है कि यह सिद्धान्त भी निरर्थक है।

(क) यदि कोई भाषा नहीं थी तो आरंभ में लोग कैसे इकट्ठे हुए?

(ख) एकत्र भी हो गए तो शब्द कैसे गढ़े गए? वस्तुतः बिना विचार - विनिमय के न तो इकट्ठा होना संभव है, और न प्रतीक - रूप में नामों आदि का निर्णय ही। और यदि इकट्ठा होने के लिए या नाम निश्चित करने के लिए लोग विचार-विनिमय

कर ही सकते थे, तो उसके बाद किसी अन्य भाषा की क्या आवश्यकता थी? वह तो स्वयं एक सफल भाषा थी। इस बाद के निर्णय से पूर्ववर्ती भाषा की उत्पत्ति का जो प्रश्न खड़ा होता था, उसका समाधान इस सिद्धान्त के सहारे भी हमारी समस्या का समाधान नहीं मिलता।

(४) <u>अनुकरण सिद्धान्त</u> — (बौउ-बौउ सिद्धान्त) —

इस सिद्धान्त के अनुसार भाषा की उत्पत्ति अनुकरण के आधार पर हुई। मनुष्य ने आसपास के जीवों और चीजों आदि की आवाज के अनुकरण पर प्रारंभ में शब्द बनाए और उसी पर भाषा का महल खड़ा हुआ। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तीन उप-सिद्धान्त रखे जा सकते हैं —

(क) ध्वन्यात्मक अनुकरण

(ख) अनुरणनात्मक अनुकरण तथा

(ग) दृश्यात्मक अनुकरण।

(क) <u>ध्वन्यात्मक अनुकरण सिद्धान्त</u> —

इसके अनुसार मनुष्य ने अपने आसपास के पशु-पक्षियों आदि से होने वाली ध्वनियों के अनुकरण पर अपने लिए शब्द बनाये और फिर उसी आधार पर पूरी भाषा खड़ी हुई। इसके विरुद्ध कई बातें कही गई हैं।

(क) रेनन ने इस सिद्धान्त का विरोध इस आधार पर किया था कि विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं विकसित प्राणी होता हुआ भी मनुष्य स्वयं कोई ध्वनि नहीं उत्पन्न कर सका और इतरों की ध्वनियों का उसे अपनी भाषा बनाने के लिए सहारा लेना पड़ा।

(ख) यदि इसे स्वीकार भी करें तो हर भाषा के कुछ ही शब्दों की रचना इससे स्पष्ट होती है जैसे — चीनी मिआऊ (= बिल्ली), हिन्दी म्याऊँ। शेष ११ प्रतिशत से भी अधिक शब्दों के बारे में यह मत मौन है।

(ग) इन शब्दों का आधार ध्वनि अनुकरण होता तो संसार की सभी भाषाओं में उनके लिए एक से शब्द होते, किन्तु यह आवश्यक नहीं है। अनुकरण प्रायः सर्वदा ही अपूर्ण रहता है।

(२) अनुरणनात्मक अनुकरण, अनुरणन सिद्धांत या अनुरणनमूलकता वाद — इस वाद के अनुसार निर्जीव पदार्थों के अनुरणन के आधार पर शब्द बने होंगे। हिन्दी के कल-कल, छल-छल, झम-झम, खटपट आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं।

जहाँ तक इन शब्दों का संबंध है, अवश्य ही ये पदार्थों के अनुरणन के आधार पर बने होंगे, पर उनकी संख्या भी अत्यल्प है। अतः इनसे भाषा की उत्पत्ति के संबंध में कोई महत्वपूर्ण सहायता नहीं मिलती।

(ग) दृश्यात्मक अनुकरण — इसके शब्द तो (जगमग, दगदग, जगजग) तो भाषा में और भी कम होते हैं। उपर्युक्त आक्षेप इस पर भी लागू होते हैं।

(६) आवेग (पुह-पुह) सिद्धांत —

इसे मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनोराग-व्यंजक शब्दमूलकतावाद, आदि अन्य नामों से भी पुकारा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार हर्ष, शोक, विस्मय, क्षोभ, क्रोध, घृणा आदि मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति से जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त के मान्य होने में कई कठिनाईयाँ हैं —

(क) विभिन्न भाषाओं में इस वर्ग के शब्दों में एकरूपता नहीं है। संसार भर के आदमी न तो दुःखी होने पर एक प्रकार से हाय करते हैं और न प्रसन्न होने पर एक प्रकार से वाह।

(२) आवेग-बोधक शब्दों की संख्या किसी भी भाषा में अत्यन्त अल्प है। साथ ही, वे भाषा का अविभाज्य

उनका वाक्य में प्रयोग अपवाद ही होता है। अंग भी नहीं हैं। ऐसे शब्द केवल वहाँ प्रयुक्त होते हैं जहाँ बोलना संभव नहीं होता, इस प्रकार ये भाषा नहीं हैं।

(ii) इन ध्वनियों को यथावत लिपिबद्ध करना भी संभव नहीं है। सारांश यह कि आवेग-सिद्धान्त भी भाषोत्पत्ति-विषयक उलझन को सुलझाने में असमर्थ है। ८

(७) **श्रमध्वनि (यो-हे-हो) सिद्धान्त** —

इसे श्रमपरिहरणमूलकतावाद भी कहते हैं। इसके जन्मदाता न्वायर नामक विद्वान थे। कठिन परिश्रम करते समय कुछ कहकर श्रमिक लोग श्रमपरिहार किया करते हैं। धोबी 'छियो' या 'छियो' कहते हैं। मल्लाह नाव खींचने के लिए 'यो-हे-हो' कहते हैं। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि किसी क्रिया के साथ स्वभावतः होनेवाली ध्वनि उस क्रिया की बोधिका होती है।

यह सिद्धांत सभी सिद्धांतों से गया-बीता है, क्योंकि उन शब्दों का भाषा में कोई भी स्थान नहीं है और न तो इन ध्वनियों से किसी विशेष अर्थ का ही संबंध है।

(८) **इंगित (जेस्चर) सिद्धान्त** —

इंगित-सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य ने अपने अंगों या आंगिक चेष्टाओं का ही वाणी द्वारा अनुकरण किया और उसी से भाषा की उत्पत्ति हुई। जैसे, पानी पीते समय होठों के बार-बार सटने या श्वास खींचने से पा-पा जैसी ध्वनि हुई तो 'पा' का अर्थ पीना मान लिया गया। इसी तरह अनेक शब्दों का आविर्भाव हुआ।

यह सिद्धान्त भी अन्य सिद्धान्तों से किसी अर्थ में श्रेष्ठ नहीं है। इशारों के अनुकरण की बात तो कुछ जँचती भी है पर अपने अनुकरण

की बात तो शुद्ध विनोद है। वस्तुतः अनुकरण शब्द अल्प-सापेक्ष है। पशु-पक्षी भी वैसा नहीं करते, फिर मनुष्य जैसा बौद्धिक प्राणी वैसा क्यों करने लगा।

(9) संगीत सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त में भाषा की उत्पत्ति मानव के संगीत से मानी जाती है। इसके अनुसार गाने से प्रारम्भिक अर्थविहीन अक्षर बने, और विशेष स्थिति में उनका प्रयोग होने से इन अक्षरों से अर्थ का संबंध हो गया।

किन्तु गुनगुनाने के अक्षरों से भाषा कैसे निकली, इसका स्पष्ट चित्र इसके समर्थकों ने हमारे सामने नहीं रखा है। मात्र ही गुनगुनाने की बात भी अनुमान पर ही अधिक आधारित है। अतः इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों ने इसे प्रेम-सिद्धान्त भी कहा है।

(10) समन्वय-सिद्धान्त -

कुछ भाषा-विज्ञानियों ने इन सिद्धान्तों की अव्याप्ति और परिसीमा देखकर सबके समन्वय को भाषा की उत्पत्ति का आधार माना है। तात्पर्य यह कि किसी एक सिद्धान्त को भाषा का आरम्भक मानने के बदले सबों को मानना अधिक उचित है। कुछ शब्द अनुकरण से उत्पन्न हुए तो कुछ आवेग की तीव्रता से और कुछ श्रम के साहचर्य से। इस तरह समन्वय को भाषा की उत्पत्ति का कारण मानना निश्चित ही अधिक व्यापक है।

परन्तु सभी सिद्धान्तों को समन्वित कर देने पर भी भाषा के अत्यन्त साधारण अंशों की उत्पत्ति का ही समाधान हो पाता है भाषा की असीम व्यापकता और गंभीरता को देखते हुए ये सभी सिद्धान्त केवल कल्पना-विलास प्रतीत होते हैं।

ये सभी सिद्धांत यह मानकर चलते हैं कि आदि
में मानव मूक था, पर यह बात शारीरिक और
मानसिक दोनों ही दृष्टियों से असत्य है। सूक्ष्म, अमूर्त भावों के व्यंजक शब्दों की उत्पत्ति की व्याख्या इनमें किसी सिद्धान्त से नहीं होती। केवल स्थूल भावों के बोधक शब्दों को लेकर न तो किसी भाषा का आरम्भ हो सकता है और न भाषा की असीम शक्ति और व्यापकता की व्याख्या।

इन सिद्धान्तों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके उपस्थापकों ने तथ्यान्वेषण से अधिक कल्पना से काम लिया है। यह समस्या कब सुलझेगी, यह संदिग्ध है। इसीलिए आधुनिक भाषा-विज्ञान इस पर विचार-निर्धारण भी समय का अपव्यय मानता है।

परोक्ष मार्ग —

कुछ विद्वान् उलटी शैली या 'परोक्ष मार्ग' से आदिम भाषा के स्वरूप के परिचय पर अधिक बल देते हैं। यह मार्ग तीन बातों पर आधारित किया जा सकता है —

(1) बच्चों की भाषा —

व्यक्तिगत विकास की ही भाँति सामूहिक या जातीय विकास भी होता है। मानव ने भाषा उसी प्रकार सीखी होगी, जैसे एक बच्चा सीखता है। कुछ लोगों ने इसी आधार पर भाषा के आरंभ पर प्रकाश डाला है। पर सच पूछा जाय तो इन दोनों में कोई महत्वपूर्ण समानता नहीं है। बच्चा भाषा सीखता है, वह आविष्कार नहीं करता। अतः उसके आधार पर भाषा के आरंभ के विषय में पता लगाने का प्रयास हास्यास्पद ही हो...

Scanned with CamScanner

हाँ एक बात महत्वपूर्ण है। बच्चा आरंभ के दिनों में निरर्थक ध्वनियों का उच्चारण करता है और उसे दूसरों के अनुकरण का कुछ भी ध्यान नहीं रहता तो उस दशा से भाषा की आरंभिक दशा का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। कभी-कभी लड़के पूर्णतः नवीन शब्द भी गढ़ डालते हैं, इससे भी भाषा के आरंभ पर प्रकाश पड़ सकता है।

(2) असभ्य जातियों की भाषा —

असभ्य तथा अत्यन्त पिछड़े हुए लोगों की भाषा के विश्लेषण से भी भाषा के ~~विकास~~ आरंभिक रूप पर प्रकाश पड़ सकता है। सच तो यह है कि ये भाषाएँ सभ्य भाषाओं से कुछ ही पीछे पूर्व की हो सकती हैं, अतः इनको बिल्कुल आरंभिक भाषा नहीं माना जा सकता। असभ्य से असभ्य जाति की भाषा भी जाने कितनी ही सदी पुरानी होगी। इससे इतना ही लाभ हो सकता है कि सभ्य भाषाओं की तुलना में इनके अन्तर देखकर इनकी तुलना में और पहले की भाषा की दशा का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

(3) आधुनिक भाषाओं का इतिहास —

भाषा की आरंभिक दशा के विषय में कुछ जानने का यह सबसे सीधा, सच्चा और महत्वपूर्ण पथ है। इसमें हम अन्त से शुरू करके आरंभ तक पहुँचना चाहते हैं। इसमें हमारा आरंभ अनुमान पर आधारित न होकर निश्चित दशा पर आधारित है जबकि उन सिद्धांतों में सब कुछ अनुमान ही अनुमान था।

आज की किसी भी भाषा को लें उसका अध्ययन करें और फिर पीछे उसके

इतिहास का वहाँ तक अध्ययन करते जाएँ जहाँ तक सामग्री मिले। इस अध्ययन के आधार पर भाषा के विकास का सामान्य सिद्धान्त निकाल लें। उन सिद्धान्त के प्रकाश में आज की भाषा की तुलना उस के प्राचीनतम उपलब्ध रूप से करें और देखें कि कौन सी बातें आज की भाषा में नहीं हैं, पर प्राचीन में हैं। इसके बाद हम यह आसानी से कह सकते हैं कि वे विशेषताएँ यदि भाषा के प्राचीनतम उपलब्ध रूप में दस प्रतिशत हैं तो भाषा के बिलकुल प्रारंभ में सत्तर या अस्सी प्रतिशत रही होगी।

वस्तुतः भाषा के आविर्भाव का प्रश्न मनुष्य समाज के विकास की समस्या के साथ अनिवार्य रूप से उलझा हुआ है और जबतक विकासवाद के उपस्थापक डारविन आदि विद्वानों के खोए हुए पूर्वजों का पता नहीं मिलता और विकासवाद की शृंखला की टूटी हुई कड़ी नहीं मिलती तबतक भाषावैज्ञानिक भाषा के आदि स्रोत तक पहुँचने में नितान्त असमर्थ हैं।